जापान

भारती

प्रवेशांक मार्च १९९९

संयोजक

सौरभ सिंघल

रंजन कुमार

पता :

२०८, मैंशन न्यू ताकानावा

२-१०-१५ ताकानावा

मिनातो कू, तोक्यो - १०८

फोन/फैक्स : रंजन - ०३-३४७३-६०४३

फोन : सौरभ - ०३-३४६२-०८५३

ई-मेल : ranjan@twics.com

इस अंक में

*

हमारा पन्ना

होली है

বঙ্গাব্দের বিভ্রান্তি

संस्मरण

आँखों देखी

बचपन

विविध

मंगलम् भगवान विष्णु, मंगलम् गरुड़ध्वजः
मंगलम् पुण्डरीकाक्षः, मंगलाय तनोहरि

रंग-अबीर भरे होलीमय अभिवादन के साथ जापान भारती का प्रवेशांक आपके हाथ में है । यह एक पत्रिका मात्र नहीं एक प्रयास है परदेस में अपनी जड़ों से जुड़े रहने का । भारतीयता की पहचान बनाए रखने का । जापान के लोगों को भारत से परिचित कराने का । इस प्रयास में हर भारतवासी का योगदान तो परम आवश्यक है ही, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा सेवी जापानवासियों का साथ मिले बिना भी यह महायज्ञ पूर्ण नहीं होगा । भारती में हर भारतीय भाषा के पाठक और लेखक का खुले दिल से स्वागत है । आप सब का सम्पूर्ण सहयोग और आशीर्वाद हमारे साथ है, इसी भरोसे हमने यह विनम्र शुरूआत करने का साहस जुटाया है । अपनी प्रतिक्रिया देकर हमारा साहस बढ़ाएँ । होली की बधाइयाँ !!

जापान भारती

ஜப்பான் பாரதி - இது ஒரு பத்திரிக்கை மட்டுமல்ல ! வேரூன்றிய நம் இந்தியக் கலாச்சாரத்துடன் நம்மை பிணைத்து வைத்திருக்க ஒரு முயற்சியும் கூட ! நம்மை இந்தியராக அடையாளம் காட்டிக் கொள்ளவும், ஜப்பானியர்களுக்கு இந்தியாவை அடையாளம் காட்டவும் கிடைத்திருக்கும் ஒரு சந்தர்ப்பம் ! இந்தப் பெருமுயற்சிக்கு ஜப்பானில் இருக்கும் இந்திய மக்களின் பேரன்பும், ஆதரவும் இன்றியமையாதது என் கருதுகிறோம். இந்திய மொழிகள் அறிந்த ஜப்பானிய மக்களின் ஆதரவையும் வேண்டுகிறோம். உங்களிடமிருந்து இந்தியாவின் பல்வேறு மொழிகளில், படைப்புகளை வரவேற்கிறோம். உங்களின் ஆசிகள் மற ம் நல்வாழத்துக்களுடன் இந்தப் பத்திரிக்கையைத் தொடங்கி, முதல் பதிப்பை உங்கள் பார்வைக்கு சமர்ப்பிக்கிறோம். இந்த முதல் இதழ் பற்றிய உங்களின் கருத்துக்களையும், ஆலோசனைகளையும் தெரிவித்து எங்களை உற்சாகப்படுத்தவும் வேண்டுகிறோம்.

होली, होलिका, वसंतोत्सव, धूलिकावंदन, और फाग भारत के सबसे रंग-बिरंगे त्योहार के नाम ही नहीं देश की रंगारंग विविध संस्कृति की पहचान है । होली के शुभ अवसर पर इसके सांस्कृतिक पक्ष के साथ-साथ महाराष्ट्र और हरियाणा ही नहीं चीन की भी भीगती-भिगोती होली की रस-भरी फुहार :

सांस्कृतिक एकता का पर्व

भारतवर्ष के चार प्रमुख त्यौहारों में से एक होली शिशिर ऋतु के अंत की सूचना लाती है और वसंत ऋतु में मनाई जाती है । इसलिए होली का एक प्राचीन नाम है *वसंतोत्सव* । वसंत ऋतु में प्रकृति अपने सुंदरतम रूप में होती है । मौसम सुहावना होता है । खेत फसलों से लहरा उठते हैं । उपवनों में फूल महक उठते हैं । आम के पेड़ों पर बौर आ जाते हैं । कोयल खुशी से गाने लगती है । इस समय न अधिक सर्दी होती है, न गर्मी और न बरसात। इसलिए ऋतु-परिवर्तन और वसंत के स्वागत में लोग रंगो से खेल कर उत्सव मनाते हैं और इसी को *होली* कहते हैं । होली वर्ष के अंतिम मास फागुन के अंतिम दिन खेली जाती है । इसलिए यह वर्ष की समाप्ति और नये वर्ष के आगमन की प्रसन्नता भी सूचित करती है । भारत एक कृषि-प्रधान देश है । इसलिए यहाँ फसल, ऋतुओं और मौसम के आनन्द को मिल-जुल कर मनाने की परम्परा है । इस प्रकार *होली* त्योहार मनाने का एक कारण तो ऋतु-परिवर्तन से ही जुड़ा है ।

होली का धार्मिक महत्व भी कम नहीं है । जिस दिन होली खेली जाती है, उससे पिछले दिन रात को होलिका-दहन किया जाता है। फागुनी पूर्णिमा की शाम को जगह-जगह पर होली जलाते हैं और उसमें माला, गन्ना, नारियल, जौ, अलसी आदि डाल कर उसकी परिक्रमा करते हैं । होली जलने के पीछे एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा है । होलिका विष्णुद्रोही राक्षस हिरण्य-कशिपु की बहन थी, जिसे वरदान था कि वह आग में नहीं जलेगी । हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद विष्णु का भक्त था । उसने प्रह्लाद को मारने के बड़े उपाय किए, पर वह नहीं मरा । तब उसने होलिका से कहा कि वह बालक प्रह्लाद को गोदी में ले कर आग में बैठ जाए । होलिका ने ऐसा ही किया । पर विष्णु की भक्ति के कारण प्रह्लाद नहीं जला और होलिका जल गयी । तब से ही होली जलाने की प्रथा प्रारम्भ हुई ।

होली पर्व के साथ अनेक सांस्कृतिक परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं । दक्षिण भारत में इस दिन फागुनी व्रत किया जाता है, जिसे कल्याणव्रत कहते हैं । यह व्रत भगवान शिव को समर्पित है ।

माना जाता है कि इस दिन भगवान शिव ने तीसरे नेत्र की ज्वाला से कामदेव को भस्म किया था। एक दूसरी कथा के अनुसार इस दिन शिशु कृष्ण भगवान ने पूतना राक्षसी को दूध पीते-पीते ही मार डाला था । होली का जितना सम्बंध कृष्ण से है, उतना किसी भी और देवी-देवता से नहीं । संगीत, नृत्य और दूसरी कलाओं में श्रीकृष्ण और गोपियों के होली खेलने के कई रूप मिलते हैं । फिर वृंदावन और ब्रजभूमि में होली की बात ही कुछ और है । इसकी तैयारी काफी पहले से की जाती है । गाँव-गाँव में होली-गीत और फाग, चौताल की गूँज सुनाई पड़ने

लगती है । *खेले अवध में होरी श्याम* एक ब्रजगीत है।

होली जलाने के दूसरे दिन जो उत्सव करते हैं, उसको धुलँडी कहते हैं । इसका एक पुराना नाम 'धूलिकापर्व' भी है । परम्परा के अनुसार इस दिन होली की बची राख की वंदना करते हैं और उसे एक दूसरे के मस्तक पर लगाते हैं । हो सकता है, धीरे-धीरे इसी का रूप बदल गया और धूलि के स्थान पर रंग, अबीर, गुलाल और कुमकुम का चलन शुरू हो गया । फिर पिचकारी से रंगों से भिगोने में लोग मजा लेने लगे । रंगों को कभी फूलों के रंगों से बनाते हैं और कभी कृत्रिम तरीकों से । पर इसमें कोई संदेह नहीं कि होली एक राग-रंग का त्योहार ही है । गाना-बजाना, रंग खेलना, खाना-पीना और एक दूसरे के गले मिलना होली की खास बातें हैं । इसी से इस त्यौहार की इतना महत्ता है । इन सब बातों के पीछे एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति प्रेम-भाव ही प्रमुख रहता । प्रेम है तो प्रसन्नता है, उमंग है, उल्लास है । होली सब लोगों को निकट लाती है और एक सा बना देती है । आपसी एकता और भाईचारे की इससे अच्छी मिसाल और क्या हो सकती है कि सब लोग रंगों में रंग कर अपने अलग-अलग रूपों को भूल जाते हैं । सब एक से ही दिखाई देने लगते हैं । होली भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धांतों - एकता, प्रेम और समानता का प्रतीक है । इसी लिए इसे सांस्कृतिक पर्व का गौरव प्राप्त है ।

डा. शशि तिवारी,
संस्कृत विभाग, मैत्रेयी कॉलेज, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली - ११००२१

महाराष्ट्र में होली

उत्तरप्रदेश में मथुरा-वृन्दावन में भगवान कृष्ण की पावन जन्मभूमि पर जहाँ आज भी होली बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है, वहीं गुजरात में अर्थात द्वारिकाधीश के राज्य में रास , गरबा नृत्य और आजकल दांडिया रास का महत्व है । लेकिन अरबी सागर की लहरों की अठखेलियों से आह्लादित महाराष्ट्र में क्या होली मनाई जाती है ? और अगर मनाई जाती है तो कैसे ?

महाराष्ट्र के इतिहास में सुनहरे पृष्ठों पर एक नाम अंकित है - छत्रपति शिवाजी महाराज । शिवाजी का जीवन रणभूमि पर व्यतीत हुआ । ऐशोआराम भोगविलास के अवसर बहुत कम आए । परंतु उनके प्रधानमंत्री पेशवे और पेशव वशंजों ने हाथों आई प्रभुसत्ता को वर्धमान किया और साथ में सांस्कृतिक रूप से भी आभूषित किया। फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की तिथि पंचमी , रंगपचमी के रूप में उल्लास से मनाई जाती थी। चांदी की पिचकारियों में केसरजल, गुलाबजल फवारा जाता था। होली का उत्सव पूरे पांच दिन चलता था । फाल्गुन मास की पौर्णिमा की सायं बेला होली जला कर पूजा की जाती थी। आज भी जलती होली की प्रदक्षिणा कर शंखध्वनि की जाती है । नारियल प्रसाद बांटा जाता है । साधारणतया घरों में उपद्रव मचानेवाले कीटकों की आटे की आकृतियाँ बनाकर होली में जलाई जाती हैं - दुर्जनों पर सज्जनों की विजय एक चिरंतन सत्य जानकर ! होली के दूसरे दिन धूलिवंदन के दिन प्रातः होली का भस्म माथे पर धारण किया जाता है । उस समय इस प्रकार मंत्रोच्चारण करते हैं- *वंदितासि सुरेंद्रेण ब्रह्मणा शंकरेणच ।*
अतस्त्वां पाहिनो देवी भूते भूतिप्रदाभव।।
अर्थात्, हे होलिकादेवी, आपको ब्रह्मा, विष्णु एवम्

शंकर वंदन करते हैं । इसलिए आप हमारी रक्षा कीजिए, सर्व प्राणीमात्र का कल्याण कीजिए और ऐश्वर्य प्रदान कीजिए । तीसरे दिन प्रातः चंदन, अष्टगंध, गुलाबजल इत्यादि से अभ्यंग स्नान से शूचिर्भूत होने की प्रथा है । नृत्य, नाट्य, गायन-वादन इत्यादि कार्यक्रम आयोजित कर वसंतोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है । पाँचवे दिन रंगपंचमी बड़े आनंद से रंगमय को जाती है । तो यह रहा महाराष्ट्र का पाँच दिन का होलिकोत्सव । आजकल बदलते हालात में रस्म-रिवाजों में हर जगह काफी कुछ परिवर्तन आया है । जीवन की तेज गति ने किसी भी चीज का शांत चित्त से आनंद लेना असंभव सा कर दिया है । हमारे त्यौहार भी इससे बच नहीं पाए हैं । तो अब वह रंगपंचमी, केसरयुक्त जल की पिचकारियाँ, शास्त्रीय संगीत की बैठक - सब लगभग लुप्त प्राय हो गई हैं। अब रहा है केवल होलिका दहन और धूलिवंदन।

इस परिवर्तन चक्र में एक चीज है जिसने स्वयं को स्थायी, चिरंतन, अनिवार्य रखा है और वह है होलिका भोजन का प्रमुख पकवान - पुरण पोली । भोजनस्थाली में पुरण पोली का नैवेद्य न हो तो उस दिन होली पौर्णिमा हो ही नहीं सकती ।

माधुरी लिमये
१/३ ईस्ट पटेल नगर
नई दिल्ली - ११०००८

हरियाणवी होली के मजे

मेरा जन्म-स्थान, धनाना, हरियाणा के बहुत पुराने और बड़े गाँवों में से एक है। वहाँ अलग-अलग मोहल्ले अपना-अपना फाग *रचाते* हैं । *बँगला* नाम की एक पुरानी विशाल चौपाल के सामने के बड़े मैदान में हमारे मोहल्ले का फाग आयोजित होता है । बीच में पानी से भरे बड़े-बड़े कड़ाहे रख दिए जाते हैं और खेलने के शौकीन, औरत-मर्द, कड़ाहों के पास पहुँच जाते हैं । मर्द औरतें को पानी से भिगोते रहते हैं तथा औरतें मर्दों को कोड़े मारतीं हैं । इस तरह खेलने वालों-वालियों के युगल बन जाते हैं, कभी-कभी तिकोना मुकाबला भी चलता है । बाकी, मुझ जैसे बुजदिल और सुरक्षा-पसंद लोग दर्शकों और हँसोड़ों की भूमिका निभाने के लिए चौपाल के ऊँचे, विशाल चबूतरे पर जमा हो जाते हैं। कभी-कभी कोई दबंग औरत चुपके से चबूतरे पर चढ़कर पीछे से दर्शकों पर हमला बोल देती है तो दर्शक गिरते-पड़ते इधर-उधर भागने लगते हैं। शोर मचाती हुई भीड़ ऐसे चिर जाती है, जैसे कि किसी झील में तैरती बतख ने सतह पर जमी काई को चीर दिया हो ।

औरतों को भिगोने के बदले में मर्द लोग पूरी दोपहरी कोड़ों की सुखद मार झेलते रहते हैं। कड़ाहों के आसपास की मिट्टी कीचड़ में तब्दील हो जाती है । पानी खत्म हो जाने पर यह कीचड़ आमतौर पर औरत और मर्द खिलाड़ियों द्वारा एक-दूसरे का मेक-अप करने के काम आता है ।

दिल्ली जैसे शहरों में रंगों अथवा सादे या रंगीन पानी से होली खेली जाती है । कोड़ों से मारने की परम्परा अब दिल्ली-देहात में भी बहुत कम बची है । दिल्ली में बच्चे पानी से भरी पिचकारियों से पानी की धार छोड़ते हैं या पानी के गुब्बारे एक दूसरे पर फेंकते हैं। जवान और अधेड़ लोग अपने स्वभाव, सम्बंध और सामने वाले की उम्र तथा मिज़ाज़ के मुताबिक रंग या

गुलाल से उसका चेहरा रंग देते हैं ।

कुछ इलीट, सुसंस्कृत, साधनसम्पन्न लोग तो दिल्ली से चलकर ब्रज-क्षेत्र में पहुँच जाते हैं तथा राधा और कृष्ण की रसभीनी मिथकीय स्मृतियों से घिरे हुए वृंदावन और बरसाने की होली का आनंद लूटते हैं । उनका यह आनंद लूटते हैं । उनका यह आनंद लोकल किस्म का न हो कर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय-स्तर का होता है, देशकाल से ऊपर उठ जाता है । ऐसे साधन-सम्पन्नों की होली काफ़ी हद तक रोमांटिक और कुछ हद तक पुनरुत्थानवादी हो जाती है । होली के रोमांस का अपना ही मज़ा है और पुनरुत्थानवाद का अपना । यानी डबल मज़ा । कुल मिलाकर *होली के मज़े ही मज़े*।

प्रो. हरजेन्द्र चौधरी,

५-२५-११-१४२,
ओनोहारा - हिगाशी,
मिनू सिटी,
ओसाका ५६२

चीन के पारंपारिक पर्वों में अनेक पर्व ऐसे हैं जो भारतीय पर्वों के साथ पर्याप्त समानता रखते हैं । चीन की अल्पसंख्यक ताए जाति द्वारा मनाए जाने वाला पानी छिड़कने का त्योहार भारतीय होली का ही रूपांतर है। इसी का वृतांत चीन से* डॉ. ओमप्रकाश सिंहल *की कलम से -

ताए जाति का अपना पंचांग है, जिसका आरंभ ६३९ ई. से माना जाता है । यह इस त्योहार इस पंचांग के हिसाब से पड़ने वाले नए वर्ष का उत्सव भी है । ताए जाति के लोग नव वर्ष के दिन को पोयावांमा अर्थात दिन के राजा का अवतार दिवस कहते हैं । यह दिन अर्थात् चीनी होली प्रायः मध्य अप्रैल में पड़ती है । चीनी होली तीन दिन तक चलती है । पहले दिन को सङ खान कहते हैं । इसका शाब्दिक अर्थ है विदा करना। यह दिन मुख्यतः बौद्ध-मूर्ति को स्नान कराने तथा अच्छी उपज के लिए प्रार्थना करने का है । शाम के समय लोग नागराज नौका दौड़ का कार्यक्रम देखते हैं ।

होली खेलने का कार्यक्रम दूसरे दिन होता है। इस दिन सब एक दूसरे पर जम कर पानी डालते हैं । पानी फेंकने की दो शैलियाँ होती हैं - शालीन और उजड्ड। बुजुर्गों के साथ होली खेलते समय शालीन शैली अपनाई जाती है । इसमें पानी फेंकने वाला बुजुर्ग व्यक्ति कॉलर के बटन खोल कर पानी की धार पीठ पर छोड़ता है और अपनी शुभकामनाएँ देता है। बुजुर्गों के अतिरिक्त शेष सभी के साथ उजड्ड शैली के साथ होली खेली जाती है। इसमें शालीनता के सारे नियम ताक पर रख दिए जाते हैं । मजेदार बात यह है कि किसी पर कितना भी पानी क्यों न फेंका जाए वह इसका कतई बुरा नहीं मानता । जिस पर जितना अधिक पानी फेंका जाता है वह उतना ही भाग्यशाली माना जाता है ।

अगर दिन का समय एक दूसरे पर पानी फेंकने में व्यतीत होता है तो रात का समय मिल-जुल कर नाचने गाने में बिताया जाता है । लूराङ नामक एक विशेष प्रकार की बाँसुरी की मधुर ध्वनि के साथ लोग मनमोहक मोर नृत्य करते हैं । मोर नृत्य के प्रदर्शन का मुख्य कारण इस क्षेत्र में मोरों की बहुलता है। ताए लोग मोर को सुख-सौभाग्य का प्रतीक मानते हैं ।

चीनी होली का सबसे महत्त्वपूर्ण दिन तीसरा है । यही दिन 'दिन के राजा के अवतार दिवस' के रूप में मनाया जाता है । इस दिन की शुरुआत 'काओशङ' छोड़ कर की जाती है । 'काओशङ' एक प्रकार का रॉकेट है जो घर पर बाँस में बारूद भर कर तैयार किया जाता है । बारूद भरने के साथ साथ पाँच उपहार भी रखे जाते हैं जिन्हें बड़ा भाग्यशाली माना जाता है । आग लगाने के बाद जब रॉकेट आसमान की ओर उड़ता हुआ फटता है तब उसमें रखे हुए ये उपहार जमीन पर गिर जाते हैं और लोग इन्हें पाने के लिए धक्का-मुक्की करते हैं। लोगों का विश्वास है कि जिस किसी को यह उपहार मिल जाता है उसकी तकदीर खुल जाती है । बीमारियाँ पास नहीं फटकती और रुपए-पैसे की कमी नहीं रहती है ।

तीसरे दिन का मुख्य आकर्षण तियू पाओ है । तियू पाओ एक प्रकार का खेल है जिसके माध्यम से युवक-युवतियाँ एक दूसरे के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करते हैं । इस खेल में लड़के-लड़कियाँ आमने सामने कतार में खड़े हो कर एक दूसरे पर कपड़े की सुंदर थैलियाँ फेंकते हैं । यदि कोई युवक थैली पकड़ने में चूक जाता है तो उसे युवती के पास जा कर एक उपहार देना पड़ता है । यदि कोई युवती थैली नहीं पकड़ पाती तो वह युवक के पास जा कर एक ताजा फूल उपहारस्वरूप देती है । युवतियाँ अपनी पसंद के युवक पर और युवक अपनी पसंद की युवती पर थैली फेंकते हैं । युवतियाँ थैली बहुत ऊपर और दूर फेंकती हैं जिससे उस युवक की चुस्ती की परीक्षा ली जा सके । यदि वह युवक उस लड़की को चाहता है तो थैली न पकड़ पाने का नाटक करता हुआ अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है और उस युवती के पास जा कर पहले से लाया हुआ उपहार दे देता है । यदि युवती उस युवक को चाहती है तो उपहार रख लेती है । फिर दोनों खेल के मैदान को छोड़ कर किसी एकांत स्थान पर घूमने चले जाते हैं । एक दूसरे से बात करते हैं और मन की बात कहते हैं ।

चीन में होली खेलने का इतिहास बहुत पुराना है । धाङ वंश का प्राचीन ऐतिहासिक विवरण करने वाले शाही ग्रंथ में भी इसका उल्लेख है । धाङ वंश का समय ६१८ ई. से लेकर ९०७ ई. के बीच का है । यह समय चीन के इतिहास का सबसे समृद्ध कालखंड है । यह वह समय था जब चीन और भारत के आपसी संबंध अत्यंत घनिष्ठ थे । दोनों देशों के लोग एक दूसरे के यहाँ खूब आते जाते थे । अतएव यह संभव है कि यह त्योहार भारत से आया हो ।

--भारतीय भाषा एवं संस्कृति विभाग, ५ नॉर्थ गेस्ट हाउस
पेइचिंग विश्वविद्यालय
बीजिंग - १०० ८७१

तलाश एक बसेरे की

तलाश थी
एक बसेरे की
एक हरे वृक्ष की
नजर तो आये
कई हरे वृक्ष
मैंने घोंसला भी बनाया
सबके ऊपर
पर, स्थायित्व न मिला
बिखर गया आशियाना
वृक्षों का खोखलापन
जब जाहिर हुआ
हरापन उनका
महज एक धोखा था
वे खुद परजीवी थे
कैसे देते आश्रय?
सूख चुके थे
अंदर से वे
चढ़ी थी उन पर
नकली हरियाली

- सुधीर सुमन,
आरा, भोजपुर,
बिहार
कादम्बिनी से साभार

বঙ্গাব্দের বিভ্রান্তি

বাংলা পঞ্চদশ শতাব্দীর প্রথম বছরটিও প্রায় শেষ। শুরু হতে চলেছে ১৪০২ বঙ্গাব্দ। সাধারণ বাঙালীর জীবনে বঙ্গাব্দের ব্যবহার কতিপয় বিশেষ সামাজিক আচার অনুষ্ঠানেই সীমিত। হয়তো খুব অত্যুক্তি করা হবে না যদি বলা হয়, বাঙালী জীবনে খ্রীস্টাব্দের ব্যবহার এতই ব্যাপক যে 'বাংলা কত সালে জন্ম' এই ধরনের অতি সাধারণ প্রশ্নের উত্তর দিতে অনেক বাঙালীকেই কিছুটা সময় ভাবতে হবে। অথচ জাপানে কারো জন্ম যদি শোওআ ২১ সালে হয় তো কারো বা হেইশেই ২ সালে। এখানে উল্লেখ্য যে জাপানে সম্রাটের শাসন কাল অনুযায়ী সেই যুগের নামকরণ করা হয়, যেমন সম্রাট হিরোহিতোর শাসন কাল কে বলা হয় শোওয়া যুগ অথবা বর্তমান সম্রাটে আকিহীতোর শাসনকাল কে বলা হয় হেইসেই যুগ ইত্যাদি। চলতি বছর অর্থাৎ হেইশেই ৭ সালে, শোওয়া ২১ সালে জন্মানো ব্যাক্তির বয়েস কত, এই রকম হিসেব নিকেশ এখানকার জনসাধারণ কে অত্যন্ত অনায়াসেই করতে দেখা যায়। অথচ আপাতদৃষ্টি তে অনেক সহজ বঙ্গাব্দের হিসেব কেন আমাদের ধাঁধা লাগায়?

বঙ্গাব্দের উৎপত্তি কবে এবং কী ভাবে সে সম্বন্ধেও কিছুটা মতবিরোধ আছে। সবচাইতে প্রচলিত যে মত, তা হল সম্রাট অকবর ৯৬৩ হিজরী বর্ষে সিংহাসনে আরোহণ করেন এবং সেই সময় শাসন কার্য চলত চান্দ্র ক্যালেন্ডার অনুযায়ী। এদিকে হিন্দুদের সামাজিক আচার অনুষ্ঠানে কৃষিতে পূজাপার্বন ইত্যাদিতে সৌর ক্যালেন্ডরের প্রচলন ছিল। এই দুই ক্যালেন্ডরের সমান্তরাল ব্যাবহার চলতে থাকায়। রাজা এবং প্রজা উভয়েরেই অসুবিধা হতে থাকে। এই অসুবিধা দূর করার প্রয়াসে সম্রাট আকবর 'তারীখ ইলাহী' নামের সৌর ক্যালেন্ডার প্রবর্ত্তন করেন। সিংহাসন আরোহণের ২৯ বছর পর ইলাহী অব্দের ও সৃষ্টি করেন। ২৯ বছর পর শুরু হলেও এই ইলাহী অব্দের আদি বিন্দু হিসাবে কি ধরা হয় সেই ৯৬৩ হিজরী বর্ষ যখন সম্রাট সিংহাসনে আরোহণ করেন। ৯৬৩ হিজরী বর্ষ হল গ্রেগোরীও ১৫৫৬ খ্রীস্টাব্দ। এই ইলাহী অব্দ থেকেই ধীরে ধীরে উৎপত্তি হয় বঙ্গাব্দের এবং তারও আদিবিন্দু মিলে যায় ইলাহী অব্দের আদির সাথে। ইলাহী ক্যালেন্ডার বর্ষারম্ভ হিসাবে বেছেনেওয়া হয় মেষ রাশিতে সূর্যের শংক্রমণের পরদিবসকে এবং ইলাহী অব্দের সূচনাকালে এই দিনটিছিলো ২১শে মার্চ, কিন্তু বর্তমানে গ্রেগোরী ক্যালেন্ডারে তা আসে ১৪ই এপ্রিলে। বঙ্গাব্দের এই প্রচলিত মত অনুযায়ী খ্রীস্টাব্দ এবং বঙ্গাব্দের মধ্যে এক সহজ সমীকরণ দিয়ে ব্যাখ্যা করা যায় যা হল :

(খ্রীস্টাব্দ - ১৫৫৬) (বঙ্গাব্দ - ৯৬৩) *অথবা* খ্রীস্টাব্দ (বঙ্গাব্দ - ৫৯৩)

এই মতটা থেকে সম্পূর্ণ অলাদা আরও কয়েকটি মতামত পাওয়া যায় যেমন সম্রাট আকবরে সাথে বঙ্গাব্দের কোন সম্পর্ক নেই। বঙ্গাব্দ শুরু হয় গৌর বঙ্গের রাজা শশাংকের সিংহাসন আরোহণ বর্ষ (৫৯৩ খ্রীস্টাব্দ) থেকে। এই দুটি মতবাদের উত্পত্তি সম্পূর্ণ পৃথক হলেও আশ্চর্যের বিষয় হল খ্রীস্টাব্দ এবং বঙ্গাব্দের মধ্যেকার সমীকরণে কোন বিরোধ নেই। একই রকম ভাবে হর্ষবর্ধনের সিংহাসন আরোহণ থেকে বঙ্গাব্দের শুরু এরকম মতামতও শুনতে পাওয়া যায়।

সত্যান্বেষী হিসেবে বাংলা নববর্ষের সঠিক উৎপত্তি নির্ণয়ের প্রয়োজনীয়তা অনস্বীকার্য তবে বাঙালীর জীবনে তার যদি কোন প্রয়োজনীয়তাই না থাকে তা হলে সেই প্রয়াসের কি কোনো মূল্য আছে?

রঞ্জন গুপ্ত *(রংজন গুপ্তা)*
য়াশিয়ো পার্ক, নিশী শিনাগাবা, তোক্যো

हिंदीमय

- मिवाको कोयेजुका -
जापान में हिंदी अध्ययन अध्यापन से संबद्ध ।
संप्रति - ओतानी और हिरोशिमा विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन ।

दो वर्ष पहले १९९३ में जब मुझे विदेश मंत्रालय में प्रशिक्षण केंद्र में हिंदी सिखाने का काम सौंपा गया तो यह जान कर खुशी का ठिकाना नहीं रहा कि ३० वर्ष पहले जहाँ रह कर मैंनें हिंदी सीखना शुरू किया था वहाँ से जरा सी दूरी पर वह प्रशिक्षण केंद्र था ।

प्रशिक्षण केंद्र से लौटते हुये मैं ढलान वाला रास्ता उतर कर ३० वर्ष पहले वाली जगह पर आ गई । बीच में छोटा सा देवालय होता था, प्राथमिक विद्यालय भी, जहाँ साफ मौसम वाले दिन हल्के गुलाबी रंग में खिले चेरी के फूल, नई उमंगो के साथ आकाश में फैले हुये नजर आ रहे थे ।

मुझे छात्र जीवन की याद आ गई जब १८-१९ वर्ष की आयु में मैं सरल मन के साथ कितनी खुशी के साथ हिंदी की दुनिया में कदम रख रही थी।

उसके अगले वर्ष १९९४ में एक महीने के स्थान पर तीन महीने के लिये फिर वही काम सौंपा गया । आश्चर्य की बात यह रही कि प्रशिक्षण केंद्र भी नई जगह पर नई इमारत में आ गया था । आश्चर्य क्या, बल्कि बड़े ही संयोग की बात भी निकली । प्रशिक्षण केंद्र की नई इमारत पर पहुँचने के लिये जिस रेलवे स्टेशन पर उतरना होता है, उसके आगे वाले कुछेक स्टेशनों के नाम भी बड़े परिचित से लगे । कहीं मेरा जन्म स्थान बहुत निकट तो नहीं है ?

मैंने स्थानीय कार्यालय से संपर्क किया, अस्सी-एक वर्ष की माँ की धुँधली-सी यादों को कुरेदा, और पता लगा ही लिया कि प्रशिक्षण केंद्र के आगे कोई ८-९ किलोमीटर के फासले पर, चौथे स्टेशन से जरा आगे चलने पर मेरा जन्म-स्थान मिल सकता है । समय भी ऐसा था कि अपने जीवन का पचासवाँ वर्ष पूरा होने जा रहा था । ५१ वें वर्ष में पदार्पण अपने जन्मस्थान पर ही करने की इच्छा जागी। मेरा जन्मदिन उसी प्रशिक्षण वाली अवधि में पड़ता है । क्या संयोग था । फिर भी इस के आगे मैं नहीं जान पाई कि आज खड़े हुए दर्जन भर मकानों में से किस के पास वह घर रहा होगा जिस में मेरा जन्म हुआ होगा । इन में से ५० वर्ष पुराना कोई भी घर नहीं बचा है।

माँ की याद्दाश्त इतनी तो रही कि वहाँ पास में छोटा सा देवालय था - सख्त चढ़ाई वाले रास्ते से सट कर ।

लेकिन उस देवालय के किस ओर घर था, उन्हें याद नहीं आ रहा था । अच्छा यह हुआ कि अब तो संभावनाओं वाले घरों की संख्या आधी रह गयी थी। वह घर द्वितीय विश्व युद्ध के अंतिम काल में , आर्मी सर्जनों आदि के परिवारों के लिये निर्मित घरों में से था । पिताजी वहाँ नहीं के बराबर लौट पाते थे । माँ, बच्चों का, परिवारजनों का पेट भरने के लिये बड़ी कोशिशें करके दूर-दूर तक खरीददारी के लिये निकल पड़ती थीं ।

मेरे जन्म के दो महीने बाद पिताजी को दूसरे स्थान भेजा गया । सारा

परिवार वहीं रहने के बाद दूसरी जगह के लिये रवाना हो गया । देखा जाये तो मुझे इस दुनिया में लाने के लिये ही शायद वह जगह मिली थी ।

माँ पर और तो जोर नहीं डाला जा सकता था। ५० वर्षों के बाद उसी जगह पर उन्हें लाया भी जाये तो वह कैसे पहचान लेंगी । यह काफी है कि यह जान सकी कि मेरा जन्म उस देवालय के पास वाले किसी मकान की जगह पर खड़े घर में अवश्य हुआ था ।

मैं अपने जन्म की ५०वीं वर्षगाँठ पर अपने जन्मस्थान के बहुत नजदीक भटकती रही । शांति के समय में भी ५० वर्ष में काफी कुछ बदल जाता है ।

याद करने के लिये माँ पर कस कर जोर डाला तो उन्हें किसी तरह तत्कालीन क्षेत्रीय मुखिया का पारिवारिक नाम याद आया । उसी नाम वाले परिवार का घर, देवालय के उस ओर खड़ा है । ज्यादती समझते हुये भी मैंने उन्हें पत्र लिखा । बड़ी ही हृदयस्पर्शी पँक्तियों में उत्तर आया । ५० वर्ष पहले वहाँ वह नहीं थे, न ही उनके कोई बुजुर्ग ।

प्रशिक्षण काल के अंतिम दिन मैं फिर सख्त चढ़ाई वाले उस देवालय के पास हरियाली वाली उस जगह पर जा पहुँची । वहाँ बने दो झूलों में से एक पर एक वयोवृद्ध सज्जन झूल रहे थे । कहीं वह वही मुखिया तो नहीं होंगे ? चलते-चलते, सोचते-सोचते, अंततः मैंने साहस किया और मैं उनके पास गयी और उनके पास वाले झूले पर झूलते हुये बातें करने लगी ।

उसी स्थान विशेष पर मेरे लगाव वाली बात सुन कर उन्होंने सांत्वना दी कि मुखिया जैसे नाम वाले संभवतः जरा सी दूरी पर नये घर में चले गये हों ।

विदेश मंत्रालय के प्रशिक्षण केंद्र वाली जमीन समेत वहाँ कुछ बड़े पैमाने पर सरकारी भू-संपत्ति रही होगी । पिताजी आर्मी सर्जन थे, तभी तो द्वितीय विश्व युद्ध के अंतिम काल में मेरे परिवार को वहाँ घर मिल गया था । और शायद पिताजी के कारण ही घर में तोक्यो सैनिक अदालत के बारे में ज्यादा बातें हो रही होंगी । जिन्हें युद्ध अपराधी ठहराया गया, उन्हें १९४८ में सजा हो गयी । न्यायाधीशों में से एक डॉ. राधाविनोद पाल थे । मुझ चार वर्षीया बच्ची के मन में भी उनका ये कथन अच्छी तरह याद हो गया था कि *युद्ध में जीतने वाले देश, युद्ध में हारने देशों को युद्ध अपराधी ठहराने का अधिकार नहीं रखते* ।

संभवतः मेरे भारत की ओर आकर्षित होने के आधार में घर पर चर्चित डॉ. पाल वाली बात रही होगी । गुट निरपेक्ष देशों के नेता प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के बारे में भी मैं किशोरावस्था में जान गई थी । हाई स्कूल में विश्व इतिहास वाली कक्षा में भारत के स्वतंत्रता संग्राम के बारे में जानकारी मुझे बहुत ही रोचक लगी ।

इसे तो अपना चुनाव या झुकाव कहा जा सकेगा कि जब मेरी दृष्टि भारत की ओर स्पष्ट रूप से गई तो मैंने वहाँ की भाषा को चुना था । वह भी डॉ. पाल की मातृभाषा, बंगला को न लेकर हिंदी को ही चुना । हिंदी पढ़ने के लिए तोक्यो विश्वविद्यालय में प्रवेश परीक्षा में बैठी। और संयोगवश दाखिला पा गई ।

संयोग से भी बढ़ कर बड़े ही मजे की बात यह रही कि मैंने भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों पर शोध निबंध लिखा था, जिनके उपन्यासों में से एक का शीर्षक है, 'सबहिं नचावत राम गोसाईं'।

कोबे का नरक और सांस्कृतिक झटके

महाविनाशकारी हानशिन भूकंप के दो माह बाद भी हानशिन क्षेत्र में हैं बिछड़ों की यादें और मौत का सन्नाटा । इस त्रासदी का कुछ आँखों देखा हाल ओसाका विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय में हिंदी के **प्रोफेसर हरजेन्द्र चौधरी** *की कलम से --*

दुर्घटना वह नहीं है जो एक बार घटित हो कर बीत जाए, स्मृति से धुल-पुँछ जाए । दुर्घटना तो वह है जो एक बार घटित हो कर बीतने के बजाय बार-बार अपने को दोहराती रहे, इन्सान के स्मृति-कोष पर हावी हो जाए । इस बात को मैंने कंसाई क्षेत्र में, १७ जनवरी १९९५, की सुबह आए भूकंप के बाद बहुत तल्खी से, और लगातार महसूस किया है । अभी तक उसकी गिरफ्त से सैं पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ हूँ।

मैं १६ जनवरी की रात देर तक पढ़ने के बाद सोया था । सुबह छह बजे अलार्म से मेरी नींद टूटती । लेकिन उस सुबह अलार्म ने नहीं बल्कि एक ऐसे अनुभव के आक्रमण ने नींद को तोड़ा, जो अब भी कभी-कभी भीतर में थरथरी पैदा कर देता है । सुबह पौने छह बजे के लगभग सब-कुछ हिल उठा । इन्द्र के मिथकीय सिंहासन की तरह सब-कुछ डोलने-डगमगाने लगा ।

३० जनवरी, १९४८ की शाम गांधी जी को गोली लगने पर उनके मुँह से एक बार 'हे राम' निकला था । १७ जनवरी १९९५ की सुबह मेरे मुँह से अनेक बार 'हे भगवान ..... हे भगवान' निकला। गांधी के मुख से आस्था उच्चारित हुई थी, मेरे मुँह से भय-भरी ध्वनि निकली थी। अब उन क्षणों के बारे में सोचता हूँ तो कुछ मुहावरे और दंतकथाओं के कुछ विवरण और चित्र याद आते हैं । 'पैरों तले की जमीन खिसकना ' क्या होता है - उन क्षणों में मैंने महसूस किया । मृत्यु को अपने इतने निकट अनुभव करना कितना आतंकप्रद अनुभव था ।

गड़गड़ाहट - डगमगाहट थमने पर भी कुछ देर में यूँ ही आतंकित-सा, बिस्तर पर बैठा रहा । उठने के लिए शक्ति और साहस से काम लेना पड़ा । उठ कर जब बेडरूम से बाहर आया तो ड्रॉईंग-रूम की लाइटों के दो प्लास्टिक कवर नीचे फ़र्श पर गिरे पड़े थे । टेलीविज़न सेट फुट-भर आगे सरके स्टैंड पर से कूदकर नीचे फ़र्श पर औंधा गिरा पड़ा था । सब-कुछ अस्त-व्यस्त था । किसी भी चीज को छूते हुए दहशत महसूस हो रही थी । स्वयं को आश्वस्त करने के लिए बाल्कनी में जा कर बाहर की दुनिया को देखा - सड़क सुनसान थी । लगा कि मेरे अतिरिक्त कहीं कोई प्राणी नहीं है । .... मुझे नई दिल्ली की एक बरसों पुरानी बात याद आई -- जब अचानक हमारे घर के खिड़कियाँ-दरवाजे बज उठे थे और गहरी नींद से बाहर आते हुए मुझे लगा था कि शायद कोई चोर आ गया । ... लेकिन पड़ोस के सब घरों की लाइटें इस बीच जल चुकी थीं और लोग-बाग बाहर निकल कर बातें करने लगे थे - 'भूकंप आया था' । देर तक लोग बातें करते रहे थे ।

लेकिन यहाँ जापान में सब-कुछ इतना डगमगाया, फिर भी कुछ

नहीं । सब खिड़कियाँ-दरवाजे पूर्ववत बंद । लोग भी घरों में बंद। एक क्षण के लिए मुझे संदेह हुआ कि क्या मैं किसी दुःस्वप्न से गुजर रहा हूँ ! क्या यह सब सच नहीं है !

लेकिन वह सब दुःस्वप्न जैसा हो कर भी दुःस्वप्न नहीं था, सच था । लोग अपने-अपने घरों में टी.वी. ऑन कर के उस सच की विस्तृत जानकारियाँ ले रहे थे । लेकिन मेरा टी.वी. तो गिर कर टूट गया था, इसलिए मेरे पास पास-पड़ोस में झाँकने के अलावा सच को जानने का को तरीका नहीं बचा था ।

डरते-डरते गैस ऑन कर के देखी तो पाया कि सप्लाई आ रही है ! चाय बनाई । नाश्ते का जुगाड़ किया । दिनचर्या के तमाम जैविक पहलुओं को निभा कर तैयार हो कर युनिवर्सिटी चला गया । वहाँ ज्यादातर कमरे खाली थे । पहले पीरियड में अठारह में से सिर्फ तीन विद्यार्थी तशरीफ लाए, उनमें से भी दो कुछ देर से पधारे । बाद में युनिवर्सिटी की छुट्टी घोषित कर दी गई । कुछ उपस्थित प्रोफेसर-सहयोगियों से बात की तो मुझे भयानक सच की जानकारी मिलनी शुरू हुई । दोपहर टी.वी. देखने का मौका भी मिला । कोबे शहर के दृश्य देखे तो लगा कि यह कोई हवाई हमले से बरबाद हुआ शहर है । सब-कुछ युद्ध-संबंधी अमेरिकी फिल्म सा लग रहा था । मलबे में तब्दील घरों, टूटी हुई सड़कों - रेल-पटरियों, उलट-पुलट हुई रेलों, तहस-नहस पुलों और अनेक अधटूटी झुकी हुई इमारतों को देखने पर पता चला कि सच दुःस्वप्न जैसा नहीं, बल्कि दुःस्वप्न से कहीं ज्यादा खौफनाक है। ... इसी दहशत के बीच फँसे-फँसे मैंने भारत फोन मिला कर कहा कि भूकंप आया था, सब ठीक है, चिंता न करें । ... ओसाका के आसपास के कुछ जापानी व भारतीय मित्रों-परिचितों का हालचाल पता करने की अनेक कोशिशें बेकार हो गईं - क्योंकि फोन लाइनें टूट गई थीं । जापान में फोन खराब होने का यह, मेरे लिए, पहला और एकमात्र अनुभव था ।

इस हादसे के बाद मुझे भारतीय और जापानी सोच का गहरा फर्क भी मालूम हुआ । भारत में कोई हादसा हो - कुदरत की तरफ से या आदमी की तरफ - सरकारी एजेंसियाँ प्रायः बहुत देर बाद हरकत में आती हैं, पर लोग तुरत एक्शन लेते हैं । किसी चोर, डाकू या जेबकतरे की सामूहिक पिटाई से ले कर बाढ़ या भूकंप जैसे प्राकृतिक हादसे के शिकार लोगों की सामूहिक, निःस्वार्थ, अनायास सहायता तक ! सब-कुछ बहुत स्वाभाविक ढंग से होता है - बिल्कुल ऑटोमेटिक ! *संभवतः हिंसा और दया हम भारतीयों के स्वभाव के दो ऐसे अतिवादी छोर हैं, जो हमें तुरंत एक्शन लेने के लिए प्रेरित करते हैं ।* परंतु जापानी स्वभाव बहुत सधा हुआ और ठंढा है । मुझे पता नहीं कि जापानी हृदय में आँच या उष्मा है या नहीं, लेकिन यह सच है कि अधिकतर जापानी चेहरों पर तो वह नहीं ही है । एक खास किस्म की ठंडी औपचारिकता ही देखने में आती है ।

मैंने भूकंप के तीसरे दिन अपने कुछ विद्यार्थियों से बात की । उनसे पूछा - 'क्या आप लोग कोबे के लोगों की या अपने कोबेवासी मित्रों की मदद करने नही जाएंगे ?' उत्तर मिला - 'पुलिस मदद कर रही है ।' 'संख्या और साधनों की दृष्टि से पुलिस-बल की अपनी सीमाएँ हैं और इतने बड़े हादसे के बाद बहुत मदद की जरूरत होती है' - मेरा यह सामान्य सा तर्क मेरे विद्यार्थियों को शायद बेकार लगा, और

उनकी ठंडी 'कानूनबद्धता' मेरे गले नहीं उतरी ।

खैर ! भूकंप के पाँचवें दिन रविवार, २२ जनवरी की गरजती-बरसती सुबह मैंने अपने एक प्रोफेसर मित्र के साथ उमेदा से कोबे शहर तक का कुछ मुश्किल, अनिश्चित और समय की दृष्टि से लंबा सफ़र तय किया। कुछ भोजन-सामग्री, 'मिनरल वाटर' की बोतलों तथा दैनिक जरूरत की चीजों से हम दोनों लदे हुए थे । उस दिन कोबे जाने वालों की अच्छी संख्या थी और अधिकतर लोग हमारी ही तरह लदे हुए थे। कुल मिला कर माहौल भारत जैसा था । उमेदा से सांदा के बीच हमने ट्रेन से ताकाराज़ुका इलाके में अनेक टूटे हुए घरों और नीले पोलीथीनों से ढकी हुई अधटूटी या अधझड़ी छतों का लंबा सिलसिला देखा । सांदा से तानीगामी की ट्रेन ली और तानीगामी स्टेशन से सबवे-ट्रेन लेकर शिन-कोबे स्टेशन पहुँचे ।

अपनी एक छात्रा (तथा संभव हो तो दूसरे लोगों) की मदद करने के उद्देश्य के हम कोबे गए थे । मुख्य सड़क के साथ-साथ बने फुटपाथ पर दरारें ही दरारें थीं । वर्षा का पानी रिस-रिस कर उन दरारों में जा रहा था । सब फुटपाथ टूट टूट कर उबड़-खाबड़ हो गए थे । भुरभुरे, थरथराते से फुटपाथों पर चलते हुए लग रहा था कि हम लोग किसी भी क्षण जमीन में गर्क हो सकते हैं ! यहाँ कभी भी, किसी भी क्षण, किसी भी ओर से आ कर मौत किसी भी आते जाते आदमी को दबोच सकती है। अधिकतर इमारतों की दीवारों में कम या ज्यादा दरारें फटी हुई थीं । कुछ ऊँची इमारतें बूढ़े आदमी की तरह झुक कर ठिठक गई थीं । साइड की गलियों के भीतर झाँकने पर बीच-बीच में ढहे हुए मकानों के मलबे दिख रहे थे । .... बार-बार मन प्रार्थना कर रहा था कि बारिश न हो और फिर से भूकंप न आए! पर बारिश लगातार हो रही थी । कभी कम, कभी ज्यादा । और भूकंप की आशंका भी लगातार बनी हुई थी ।

चारों ओर बदहवासी और दहशत का नजारा था ! 'नरक' और किसे कहते होंगे !उस 'नरक' को देखने के बाद मैं कई दिन तक कुछ भी पढ़-लिख नहीं सका । यथार्थ और दुःस्वप्न का इतना घनगोर *अद्वैत* मैंने पहली बार देखा है !

पर कोबे के उस नरक में भी एक छोटी सी घटना हो गई, जो धक्का, हैरत, हँसी, आदि अनेक विरोधी भावों को उकसा गई । शरणार्थी-गृह से जब हम लौट रहे थे तो रास्ते में एक अधखुली-सी दूकान के बाहर खड़े एक सिख-युवक को देखते ही अचानक, अनायास मेरे मुँह से निकल पड़ा - 'हाँ जी, कित्थों ? पंजाब तों ?' (कहाँ से हैं ? पंजाब से ?) पर उत्तर मिला - 'यू अंडरस्टैंड इंग्लिश ?' मुझे बहुत धक्का लगा । सचमुच मैं पूरी तरह दहल गया । मेरे प्रोफेसर-मित्र ने जापानी में सरदार जी से बातें कीं । वे धाराप्रवाह जापानी बोल रहे थे और ये बता रहे थे कि हिंदी-पंजाबी बिल्कुल नहीं जानते । जापान में जन्म हुआ, यहीं पले-बढ़े दाढ़ी-केशों के अलावा उनका शायद सब-कुछ जापानी था! ('सत सिरी अकाल' बोल कर हम विदा हुए । ये तीन शब्द तो उनकी समझ में जरूर आए । उन्होंने भी ये शब्द दोहराए ।) सांस्कृतिक जड़ों से उखड़ना शायद इसी को कहते होंगे!

कोबे के प्राकृतिक महाभूकंप के बाद मेरी किस्मत में *सांस्कृतिक भूकंप* के कुछ झटके भी लिखे थे ! कुछ झटके तो लग ही चुके हैं और शायद कुछ और लगने अभी बाकी हैं! *खुदा खैर करे !*

(१७ फरवरी, १९९५, ओसाका)

गढ़वाली लोक कथा

लालची रग और ठग

बहुत पुरानी बात है अलकनंदा नदी के तट पर बसा हुआ बहुत बड़ा गाँव था। गाँव में दो शातिर - रग व ठग - अलग-अलग मकानों पर रहते थे। रग राहगीरों को लूट कर और ठग अपनी बुद्धि से काम चलाता था । एक बार ठग ने रग की अकल ठिकाने लगाने की सोची । एक रात जब रग पड़ोस के गाँव से डाका डालकर जंगल में साथियों के साथ धन का बँटवारा कर रहा था, तब ठग अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ वहाँ पहुँच गया । दोनों की दुआ-सलाम हुई, तब ठग ने बहाना बनाया कि वह श्रीनगर से आ रहा था तो रोशनी देख कर रुक गया । रग ने उसे रात वहीं रुकने के लिए कहा तो इस पर ठग ने घोड़ा पेड़ से बाँध कर वहाँ रुकना कबूल किया । जब काफी देर हो गई और ठग घोड़ा बाँधकर नहीं लौटा, तब रग ने अपने साथी से कहा कि जाकर ठग को देख आओ, कहीं अंधेरे में जंगली जानवर उसे खा न गए हों । रग का साथी ठग को ढूंढने पेड़ों के समीप गया तो उसने देखा कि ठग घोड़े की लीद को तोड़ रहा था और उसमें से चाँदी के चमाचम रुपये निकाल कर अपनी जेब में डाल रहा था । रग के साथी के पूछने पर ठग ने बताया कि आज तो वह नुकसान में रहा । मात्र चांदी के २१ रुपये ही घोड़े ने दिये, जबकि उसे उम्मीद ४० सिक्कों की थी । आश्चर्य से ओत-प्रोत वह दौड़ कर रग के पास पहुँचा व उसे पूरा किस्सा बयान किया । रग वहाँ पहुँचा और घोड़ा खरीदने के लिए ठग की मिन्नतें करने लगा । आखिर दस हजार रुपये में ठग ने घोड़ा रग के हवाले कर दिया ।

दूसरे दिन रग ने घोड़े को दिन भर हरी-हरी घास व चना खिलाया । शाम को घोड़े ने खूब सारी लीद कर दी , तब रग ने चांदी के रुपये गिनने के बजाय अपना माथा फोड़ना शुरु किया । आगबबूला हो कर रग ने ठग को जिंदा गाड़ने की कसम खा ली । रग अपनी चंडाल-चौकड़ी के साथ ठग के घर पहुँचा और जबरन उसे टाट के बोरे में बंद कर कंधे पर लादकर नदी में डुबोने चला।

चलते-चलते उसे प्यास सताने लगी । बोरे को जमीन पर पटक कर वह पानी की तलाश में गया । किस्मत का खेल ! इसी बीच एक चरवाहा बकरी हाँकता हुआ बगल से गुजरा । ठग लगा रोने-चिल्लाने, चरवाहे के पूछने पर बताया कि उसकी जबरन शादी कराने बोरे में बंद कर उसे ले जाया जा रहा है । चरवाहा था कुवाँरा और शादी की तमन्ना दिल में थी, पर शादी हो नहीं रही थी । लालच में उसने बोरा खोला, और ठग को आजाद कर स्वयं उस में बंद हो गया । ठग बकरियाँ हाँकता हुआ घर चला आया । रग महाशय लौटे और बोरे को गंगा शरण कर खुशी-खुशी घर लौट गये ।

गाँव में आग की तरह खबर फैल गई कि ठग रातों-रात ४०-५० बकरियों का मालिक बन बैठा है ।

रग और उसके साथी हैरान हो कर ठग के घर पहुँचे । ठग ने उसे देखते ही शिकायत करनी शुरु कर दी, 'अरे, फेंकना ही था तो पुल से बीच नदी

में डालते । वहाँ कम से कम हजार बकरियाँ तो मिलतीं ! अब ४०-५० से क्या काम चलेगा ?'

रात को रग व उसके सभी साथियों ने अपने आपको बोरों में बंद किया और बीच पुल से गंगा के गहरे पानी में 'जै गंगा मैया' कहकर हजार बकरियों हथियाने कूद पड़े। लेकिन बकरियाँ वहाँ होतीं तो मिलतीं । झूठे लालच में डूबकर मर गए ।

कादम्बिनी से साभार

काव्यधारा

माँ

भूख न थी
फिर भी माँ ने
लगा दिया खाना,

प्यास न थी
फिर भी माँ ने
बना दिया शर्बत,

शीत न थी
फिर भी माँ ने
ओढ़ा दिया आँचल,

कैसे सहूँगा गर्मी
सोच कर माँ ने
झल दिया पंखा,

जमाने की नजर से
बचाने को माँ ने
लगा दिया काजल,

फेर हाथ सिर पर
चूम लिय माथा,
बिना कुछ चाहे
दे दिया सब कुछ
माँ ने, प्यार से ।

जीवन

साँझ ढले
सागर किनारे
ढलते सूरज को
विदा करते-करते-
न जाने कैसे
छूट कर
चंगुल से किसी के
चूहा आ गिरा
लहरों पर
आ लगा किनारे
साथ एक लहर के
जान कुछ बाकी थी
सो जा छिपा
बीच चट्टानों के
मिटती-सी लहर
कह गई झट से
मेरा जीवन बस
एक पल का
तेरा जीवन,
बरसों का ।

पूर्वीक,

सोल ,
दक्षिण कोरिया

☆☆☆

নেই নেই

চাল , ডাল , তেল নেই - নেই কিছু বাজারে
বঙ্গবাসীর পরে এ কেমন সাজা রে ? ।।

বাজেটে দামের বোঝা ক্রমে বাড়ে
ভান্ডার শূন্য করে লক্ষী যে ছাড়ে ।।

ক্লান্ত প্রতিক্ষা শেষে কি বা মেলে রেশনে
আলো আর পাখা নেড়ে বিদ্যুৎ ক্যাশানে ।।

পড়ুয়ার মন নেই চুকলির রেওয়াজে
উচ্চাশা দমে গেছে ব্যার্থতার আওয়াজে ।।

রূপ নেই, গুণ নেই - তবু যৌতুক বিয়েতে
আতঙ্ক ধরিয়েছে কিছু পাত্রতে ।।

এটা নেই, ওটা নেই, সেটা নেই সবেতে
ঘোড়া নেই হয়ে বেঁচে আছি নেই নেই জগতে ।।

সৌগতা মল্লিক
(सौगाता मल्लिक)
मिनामी शिनागावा,
तोक्यो

होली के रंगीले मौके पर कुछ देशी पकवान और थोड़ी सी मुस्कान !!

होली के पकवान

पालक मठरी

सामग्री : पालक एक गड्डी (लगभग २५० ग्राम), मैदा २५० ग्राम, नमक २ चम्मच, बारीक कटी हुई हरी मिर्च ६, पिसी लाल मिर्च १ चम्मच, बारीक पिसी हींग १ चम्मच, घी या तेल, तलने और मोयन के लिए ।

विधि : पालक अच्छी तरह साफ करें । पानी में ५-६ बार धो कर फैला दें ताकि पानी सूख जाए । इसे मिक्सी में बिना पानी के पीस लें । परात में निकाल लें । ढाई बड़े चम्मच घी या तेल गुनगुना कर के इसमें मिलायें और छनी हुई मैदा, हरी-लाल मिर्च, नमक और हींग मिला कर गूँथ लें । छोटी-छोटी मठरियाँ बेल कर रख लें और कड़ाही में घी चढ़ा कर धीमी आँच पर कुरकुरी तल लें ।

खोये की गुझियाँ

सामग्री (३५ गुझियों के लिए) : १ कटोरी खोया, १ कटोरी शक्कर, ३ कटोरी मैदा, ३० ग्राम बादाम, ३० ग्राम किशमिश, २० ग्राम पिश्ता, २० ग्राम चिरौंजी, २० ग्राम खरबूजे की पिसी हुई गिरी, १० हरी इलायची के पिसे हुए दाने, १/२ कटोरी घी, १/२ कटोरी गरम पानी ।

विधि : ठंडे खोए में शक्कर मिला लें । बारीक, कतरी हुई मेवा और पिसी हुई इलायची भी । मैदा में घी डाल कर अच्छी तरह मसल कर एकसार कर लें । पानी डाल कर कड़ा मैदा गूँथ लें। मैदे की लोइयाँ बना कर पतले बेलन से बेल लें। बेली हुई लोइयों को साँचे पर डालें । अंदाज से खोए वाले मिश्रण का ३५वाँ भाग लोई पर रखें । लोई के किनारों पर उंगली से पानी लगा कर साँचे को बंद करें और दबाव डालें । इसी प्रकार से बाकी गुझियाँ भी तैयार कर लें । इसके बाद गुझियाँ सहज-सहज तल लें। ठंडा कर के हवा-बंद डिब्बे में रखें ।

मुस्कान

किरायेदार ने मकान मालिक से फरियाद करते हुए कहा, 'इस छत से बहुत बुरी तरह पानी टपक रहा है। मैं पूछता हूँ आखिर कब तक चलेगा ऐसा ?'

'मैं कुछ कह नहीं सकता,' मकान मालिक ने उत्तर दिया,'क्योंकि मौसम के बारे में मैं बहुत कम जानकारी रखता हूँ ।'

।।

एक अधेड़ महिला ने एक वृद्ध भुलक्कड़ वैज्ञानिक से कहा , 'याद है, आज से तीस वर्ष पहले आपने मेरे समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा था ?'

भुलक्कड़ वैज्ञानिक ने कुछ सोचने के बाद पूछा 'अच्छा, तो फिर क्या हमारी शादी हुई थी ?'

।।

एक हवलदार की पत्नी ने उसकी जेब से रुपये निकाल लिये । हवलदार बहुत क्रोधित हुआ, 'मैं तुम्हें गिरफ्तार कर सकता हूँ ।' पत्नी ने चुपचाप आधे नोट उसे थमाते हुए कहा, ' क्यों बेकार बात बढ़ाते हो ? यह लो आधे तुम रख लो ।'